प्रथम अध्याय

हिन्दी कथा साहित्य में समाजिक चेतना और दिशा परिवर्तन की समस्यायें भूमिका और विकास रेखाएँ

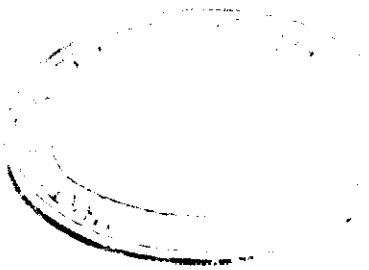

प्रथम अध्याय

हिन्दी कथा साहित्य में समाजिक चेतना और दिशा परिवर्तन की समस्यायें भूमिका और विकास रेखाएँ

'मन्नू भण्डारी के कथा साहित्य में बदलते समाज का स्वरूप' के परिपार्श्व में अनुशीलन करने से पूर्व आवश्यक है कि पहले साहित्य, समाज आदि से संबन्धित अवधारणाओं का स्पष्टीकरण कर लिया जाए। साहित्य 'सहितस्य भावम्' को चरितार्थ करते हुए हमेशा मानव जीवन का एक अभिन्न अंग रहा है। विदित है, मानव समाज अनेक प्रकार के आचार क्रमों, समूहों, नियंत्रणों आदि की व्यवस्था है जिसमें हर पल बदलाव होता रहता है। उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध एवं बीसवीं शती में सांस्कृतिक मान - मूल्यों के विघटन और संक्रमण का ऐसा विश्वव्यापी दौर चला है कि भारत में ही नहीं समग्र दुनिया में सामाजिक जीवन के क्षेत्र में एक नवजागरण अंकुरित होने लगा। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद तो स्थिति ऐसी हो गयी है कि पहले शतियों में जाकर बदलने वाले जीवन-मूल्य अब कम वर्षों में ही बदलने लगे। फलस्वरूप समाज एवं सामजिक चेतना में बदलाव द्रुतगति से होने लगा। साहित्य में

बदलाव की स्थिति का अर्थ या तो समाज का विकसित होना या विकृत होना माना जाता है। समाज के बदलाव के लक्षण सूक्ष्म होने के कारण साहित्यकार का संवेदनशील मस्तिष्क या समाजशास्त्री की दृष्टि ही समाज के बदलाव को पकड सकता है। इस प्रकार समाज, साहित्य और जीवन के हर क्षेत्र में हुए परिवर्तन, विकास आदि का संक्षिप्त अध्ययन प्रथम अध्याय में प्रस्तुत किया जाएगा।

क - समाज, साहित्य और सामाजिक चेतना

समाज की परिकल्पना मानव की देन है। व्यक्ति का अस्तित्व समाज ही निर्धारित करता है। व्यक्ति समाज की आधारशिला है। याने सामाजिक और वैयक्तिक जीवन परस्पर पूरक हैं। समाज शब्द अत्यन्त व्यापक है और उसकी समस्यायें भी व्यापक हैं। ऐसे व्यक्तियों के समवाय को समाज कहा जा सकता है जो कतिपय संबन्धों या बर्ताव की विधियों द्वारा परस्पर एकीभूत हुए हों। यह तो सर्वविदित है कि साहित्य और समाज का संबन्ध बहुत गहरा है। दोनों का सरोकार मनुष्य से है या कहें कि मनुष्य का गहरा सरोकार दोनों से है। मनुष्य समाज में रहता है, समाज का अभिन्न अंग है और मनुष्य ही साहित्य की रचना करता है। सामाजिक परिवर्तन से व्यक्ति का जीवन - स्तर सुधर जाता है और इससे समाज की प्रगति भी हो जाती है। सामजिक परिवर्तन में विचारकों और साहित्यकारों का महत्वपूर्ण हाथ होता है, जो अपने वर्ग की संकुचित स्वार्थ - दृष्टि से ऊपर उठकर निम्नवर्गीय जनता की चेतना को जागृत करते हैं। चेतना जीवन का द्योतक है। सामाजिक जीवन में लक्षित जागृति ही सामाजिक चेतना है।

1. समाज

जब से मानव जीविका और रहन-सहन केलिए एक दूसरे की सहायता लेने लगा, तब से समाज अस्तित्व में आया होगा। सामान्यतया मानव - मानव के बीच के संबन्धों के संगठित रूप को 'समाज' कह सकते हैं। दूसरे शब्दों में जहाँ भी जान हो वहाँ समाज है। अक्सर कहा गया है कि सबसे पहला समाज परिवार का ही कुछ बदला हुआ रूप था।

आर. एम. मेकीवर और चाल्स - हेच. पेज ने 'सोसाइटी' नामक किताब की भूमिका में समाज की परिभाषा यों दी है कि वह मनुष्यों के व्यवहारों को नियंत्रित करनेवाली तथा उसको सहायता प्रदान करनेवाली एक व्यवस्था है, इस परिवर्तनशील व्यवस्था को समाज कहलाता है। यह सामाजिक संबन्धों का ऐसा मकड-जाल है जो कि हमेशा बदलता रहता है। *1

डॉ. नगेन्द्र के अनुसार सामान्य रूप से समाज से अभिप्राय सामुदायिक जीवन की ऐसी अनवरत एवं नियामक व्यवस्था से है जिसका निर्माण व्यक्ति पारस्परिक हित तथा सुरक्षा के निमित्त जाने - अनजाने कर लेते हैं। *2 कार्ल डाब्लियू. ड्यूषे ने 'नशनलिज़म ऐण्ड सोषियल

*1. Society is a system of usages and procedures of authority and mutual aid of many groupings and divisions of controls of human behaviour and of liberties. This everchanging complex system we call society. It is the web of social relationships and it is always changing. R.M. Mac Iver and Charles H. Page, Society, 'Primary concepts', Page 2.

*2. डॉ. नगेन्द्र; साहित्य का समाजशास्त्र, पृ.6.

कम्यूनिकेषन' में बताया है कि एक संस्कृति संचार की सुविधा देती है, यह एक समाज को रूपायित करती है। *1 एडवेर्ड के मतानुसार 'समाज का मतलब आमतौर पर सामाजिक जीवन से है और समाज के सदस्य के समान मनुष्य का मतलब सामाजिक क्रियाकलापों के भागीदार के रूप में है।' *2

मानव के आपसी संबन्धों को सुदृढ बनाने की एक संस्था है समाज। वह एक ऐसी सुसम्बद्ध व्यवस्था है जिसके अवयव एक दूसरे से संबन्धित है। मानव जीवन का विकास विभिन्न सामाजिक संबन्धों की व्यवस्था के भीतर ही हुआ करता है। इन्हीं संबन्धों के अन्तर्गत व्यक्ति की सामाजिक, राजनीतिक, अर्थिक एवं सांस्कृतिक विचारधारओं का अध्ययन संभव होता है। अंततः इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि आपसी सहयोग और पारस्परिक हित की सुरक्षा केलिए मनुष्य - मनुष्य के बीच बनायी सुदृढ संबन्धों से जो सामुदायिक नियामक व्यवस्था कायम होती है, उसे समाज कह सकते हैं।

2. साहित्य

साहित्य प्राचीन काल से ही मानवीय चिंतन को प्रेरित करने योग्य एक शक्ति के रूप में सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त करता रहा है। आज के

---

*1. "A Common culture facilitates communication, it forms a community." Karl W Deutsch, - Nationalism and social communicatiion. P. 62

*2. 'By Society' English Anthropologist Edward Tylor obviously meant social life in general, "man as a member of society" means man as a participant in systems of social interactions of any sort.
Tylor Edward, Primitive Culture, P. 1,10

युग में साहित्य की पहुँच व्यापक एवं गतिशील है; अतः साहित्य का प्रभाव और उसके द्वारा परिवर्तन की प्रक्रिया भी तेज होनी चाहिए। साहित्य की बहुत-सी परिभाषाएँ की गई हैं। प्रेमचन्द ने उसकी सर्वोत्तम परिभाषा 'जीवन की आलोचना' के रूप मे दी है जो वास्तव में माथ्यू आरनोल्ड की विख्यात परिभाषा का ही रूपांतर है। *1 साहित्य में सामाजिक परिवर्तन लाने की शक्ति है; क्योंकि साहित्य जन समुदाय की भावनाओं को तार्किक शक्ति प्रदान करता है। साहित्य का कर्त्तव्य न केवल परिवर्तन लाना है, वरन् प्रतिगामी परिवर्तन को रोकना भी है। महावीर सिंह ने अपने लेख 'साहित्य और सामाजिक परिवर्तन की सीमाएँ' में साहित्य के दायित्व के बारे में यों बताया है कि साहित्य में जो ठेकेदारी या झंडाबरदारी चल रही है उनका विरोध करना साहित्य का दायित्व है। *2 साहित्य एक चेतना का विकास कर सकता है जो व्यक्ति को भीतरी शक्ति प्रदान कर सके। प्रेमचन्द के अनुसार मनुष्य ने जगत में जो कुछ सत्य और सुन्दर पाया है और पा रहा है, उसी को साहित्य कहते हैं।

डॉ. रमाकान्त वर्मा ने साहित्यकार को समाज का वकील माना है। *3 अच्छे साहित्यकार को शोषितों के साथ जाना है, उनकी कहानी सुनाना है, समाज और सत्ता को उनका सही चेहरा दिखाना है। प्रेमचन्द ने लिखा है - 'साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है - उनका दरजा इतना न

*1. 'Poetry is the criticism of life', Mathew Arnold.

*2. 'मधुमती' (पत्रिका) मार्च 1988 पृ.12

*3. सरस्वती (पत्रिका) 'साहित्य सत्ता और समाज' नवंबर, 1980 पृ.227

गिराइए। वह देश - भाक्ति और राजनीति के पीछे चलनेवाली सच्चाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलनेवाली सच्चाई है। *1

साहित्यिक जागृति किसी समाज की जागृति की सूचना है। साहित्य में नैतिकता एक पाखंड नहीं है; क्योंकि वह बनी बनायी व्यवस्था को अंतिम रूप से उसी रूप में स्वीकार नहीं करता। साहित्य की दृष्टि में कोई भी व्यक्ति चरित्रहीन नहीं है।

साहित्य मनोरंजन का साधन मात्र नहीं है। उसका लक्ष्य जीवन को बदलना, उसे बेहतर बनाना भी है। प्रेमचन्द ने बताया है कि साहित्य मस्तिष्क की वस्तु नहीं, हृदय की वस्तु है। जहाँ ज्ञान और उपदेश असफल होता है, वहाँ साहित्य बाजी ले जाता है।'*2

साहित्य एक ओर मानव की जिज्ञासा का शमन करता है दूसरी ओर वह सामाजिक परिवर्तन या क्रांति का वाहक भी होता है। यहाँ आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की उक्ति उल्लेखनीय है। उन्होंने कहा है - 'साहित्य उपलब्धियों के उस लिखित रूप को कहते हैं जो हमारी सामान्य मनुष्यता को प्रभावित करती रहती है और भाव के आवेग से वेगवती होकर सामान्य मनुष्य के सुख - दुःख को विशेष मनुष्य श्रोता या पाठक के चित्त में संचारित कर देती है। *3 सामाजिक परिवेश को रहन-सहन के योग्य बनाया जाना, आपसी भय, शंका, असुरक्षा की

---

*1. प्रेमचन्द, कुछ विचार पृ.20

*2. प्रेमचन्द, कुछ विचार पृ 93.

*3. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, विचार प्रवाह पृ. 135

भावना को दूर करना साहित्य का प्राथमिक दायित्व है। मतलब यह है कि मनुष्य को एक बेहतर मनुष्य बनाना ही साहित्य का ध्येय होना चाहिए। जैसे गोस्वामी तुलसीदास ने कहा-

'कीरति भनिति भूति भलि सोई।
सुरसरि सम सब कहँ हित होई।।'

लेकिन आधुनिक संवाद साधनों ने साहित्य की शक्ति को सीमित कर दिया है। फिल्म और दूरदर्शन के प्रभाव के कारण अब पुस्तकों के पाठकों की संख्या घट रही है। इस समस्या को सुलझाने केलिए लिखित साहित्य को प्रत्यक्ष रूप से प्रदार्शित करने केलिए दूरदर्शन के माध्यम का उपयोग करना समीचीन होगा। आज तत्कालीनता इतनी हावी हो चुकी है कि भविष्य की कल्पना ही समाप्त हो गई है। समाज में परिवर्तन लगातार हो रहा है। लेकिन यह विज्ञान और तकनीकी परिवर्तन का प्रतिबिंब है, वैचारिक या मूल्यगत परिवर्तन नहीं।

निष्कर्ष रूप में बताया जा सकता है कि साहित्यकार का काम युग के सत्य को चित्रित करना है। साहित्य को समाज से जुडना चाहिए, इसी में दोनों का हित निहित है।

3. सामाजिक चेतना

चेतना का उद्‌भव व्यक्ति से होता है। इसलिए व्यक्ति और समाज में जितना अटूट संबन्ध होता है उतना या उससे ज्यादा चेतना का समाज से होता है। किसी भी समाज में रहनेवाले व्यक्तियों में होनेवाली जागृति को सामाजिक चेतना की परिभाषा दे सकते हैं। जो व्यक्ति

समाज से अधिक संबन्ध रखता है उसमें सामाजिकता का भाव उतना अधिक होता है।

जीवन का आधार ही चेतना है। चेतना के बारे में 'डिक्शनरी आफ सोष्यल सयन्सस' में बताया है कि समाज में रहनेवाले व्यक्ति के आत्म पहचान को चेतना कह सकते हैं। *1 सामाजिक चेतना के बारे में डॉ. रत्नाकर पाण्डेय ने 'हिन्दी साहिय समाजिक चेतना' में बताया है कि चेतना मनुष्यों की आत्मिक एवं सत्तात्मक एकता का धर्म है।*2 नवीनता के आकांक्षी मनुष्य की साक्रिय चेतना उसे निरन्तर परिवर्तन की दिशा में अग्रसर करती है। सम्यता, संस्कृति, धार्मिकता आदि सभी क्षेत्रों में सामाजिक चेतना विकासमान है। इसलिए इसी सामाजिक चेतना से सामाजिक परिवर्तन होता है। हेरी एम. जोहन्सन के अनुसार सामाजिक परिवर्तन सामाजिक ढाँचे में परिवर्तन है।*3 परिवर्तन अनिवार्य प्रक्रिया है। मानव समाज सभ्यता के विकास के प्रांरभिक चरण से लेकर अब तक परिवर्तित शोधित एवं परिष्कृत होकर ही वर्तमान स्वरूप को प्राप्र कर सका है। आज का समाज पहले के समाज की तुलना में कई स्तरों पर भिन्नताओं से संकीर्ण है। सामाजिक रूढ़ियाँ समाज के ह्रास का कारण होती हैं। इनका विरोध करने केलिए जागरूक चेतना का होना अनिवार्य है।

---

*1. "In social context it may denote the individuals awareness of himself as a member of a group".

Julius Gould, William L. Kolb (Edited), A dictionary of social science. P.127

*2. डॉ. रत्नाकर पाण्डेय, हिन्दी साहित्य - सामाजिक चेतना पृ.9.

*3. "By social change I understand a change in social structure".

Harry M. Johnson - Sociology, P. 729

जीवन में कुछ कठिनाइयों, दुर्दशाओं और यातनाओं के अनुभव के परिणामस्वरूप जीवन की समस्याओं को हल करने का और एक उच्चतर जीवन का निर्माण करने का सक्रिय प्रयत्न मनुष्य द्वारा निरंतर होता रहता है। इसे जागृति या चेतना कहा जा सकता है। प्रत्येक समाज के किसी विशेष युग में समाज में इस तरह की जर्जर दशा के आने की तथा परिणमतः जनता की जागृति द्वारा उन समस्याओं को हल करने की प्रवृत्ति भी दृष्टिगोचर होती है। विदेशी शासन काल में भारत में हिन्दू - समाज की अवनति, विघटन और दुर्व्यवस्था के परिणाम स्वरूप ऐसी भयावह जर्जरता आने लगी थी जो उन्नीसवीं शती में चरम सीमा तक पहुँच गयी थी। इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कुछ धार्मिक नेताओं ने इस दुर्दशा को और उसके कारणों को पहचाना और व्यापक रूप में सुधार के आन्देलन शुरू कर दिये, जैसे राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, एनी बसन्त आदि। सामाजिक चेतना को प्रभावित करनेवाले तत्व हैं - राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक परिस्थितियाँ। ये समाज को अपने अधीन में रखती हैं। इनसे प्रभावित हुए बिना समाज की कल्पना भी असंभव है।

ख - सामाजिक चेतना के विविध आयाम

1. राजनीतिक चेतना और समाज

राजनीति आधुनिक सामाजिक जीवन का एक अभिन्न अंग है। सामाजिक संरचना को सुदृढ़ बनाकर सामाजिक व्यवस्था को कायम रखने में राजनीति का विशेष स्थान है। जार्ज और एकिलास थियोडार्सन के विचार में 'सत्ता और सत्ताधारा के स्रोत पर प्रभाव डालकर या

नियंत्रण रखकर सार्वजनिक नीति तैयार करने का क्रम राजनीति है। इस क्रम में प्रतियोगिता और प्रायः संघर्ष भी होता है"। *1

हर युग में राजनीति में जो परिवर्तन लक्षित होता है उसका प्रतिफलन साहित्य में विद्यमान है। भारतीय राजनीति में सबसे पहला जागरण अंग्रेज़ों के विरुद्ध हुआ। यद्यपि 1857 की क्रांति में भारतीय पराजित हो गये तो भी उसका परिणाम भारतीय चिन्तन-धारा को पूर्णतया परिवर्तित करने में सहायक सिद्ध हुआ। ए. आर. देसाई के अनुसार 'एकता ने भारतीय जनता के संयुक्त राष्ट्रीय आन्दोलन की भूमिका तैयार की *2 भारत की राष्ट्रीय चेतना राजनैतिक क्षेत्र में एक क्रांतिकारी और अभूतपूर्व बात थी। इससे समाज में जो बदलाव आया उसका परिणाम सामाजिक परिवर्तन हो गया। देश भर में राजनीतिक चेतना व्याप्त हो गई। यह चेतना हिन्दी उपन्यासों में व्यक्त हुई है।

साहित्यकार को राजनीति की हर चाल समझनी चाहिए। उसके पास राजनीतिक चेतना होना अत्यन्त आवश्यक है। राजनीतिक चेतना सामाजिक चेतना को और सामाजिक चेतना सांस्कृतिक चेतना को प्रभावित करती है।

राजनीतिक परिवेश से आज का व्यक्ति अधिक आक्रान्त है। प्रायः राजनेता सिर्फ अपनी कुर्सी केलिए चिंतित है। जन कल्याण की दृष्टि

*1. Politics is the process of creating public policy through influencing or controlling the source of power and authority. The process involves competition and usually conflict'. George A Theodorson & Achilles G. Theodorson, A modern dictionary of sociology P.303.

*2. A.R. Desai, The social background of Indian Nationalism. P.275

से उनका कोई प्रयत्न सफल दिखाई नहीं देता। भ्रष्टाचार की सीमा इतनी अधिक बढ गई है कि सारे नैतिक मूल्य नष्ट हो गए हैं। इसके बारे में डॉ. आशा मेहता ने लिखा है 'राजनीतिक क्षेत्र के विविध राजनैतिक दल अपने अपने सिद्धान्तों से जनता को फुसलाते हैं, अनेक आश्वासन देते हैं; किन्तु उनकी कथनी और करनी में अंतर और भ्रष्टाचारिता सबसे विकराल समस्या है।' *1 राजनैतिक क्षेत्र में धन तथा पद की महत्वाकांक्षा ने ही भ्रष्टाचार को पनपाया है। आज राजनीति एक गंदे नाले के समान हो गई। आज देश का शासन जनता की संपूर्ण आवश्यकताओं की पूर्ति में पूर्ण रूप से समर्थ नहीं हुआ तो जनता में आक्रोश की भावना जाग उठी है। साहित्यकार भी इससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। फलस्वरूप साहित्य में राजनीतिक चेतना के विविध पक्षों का चित्रण हुआ है।

2. आर्थिक चेतना और समाज

अर्थ किसी भी समाज के विकास की रीढ़ है। अर्थ व्यवस्था के बिखर जाने से समाज नष्ट भ्रष्ट हो जाता है। आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर समाज ही गरीबी, निर्धनता, अशिक्षा, अज्ञान और बीमारी की चपेट में पडी जनता की भलाई कर सकता है।

हर समाज का वर्ग विभाजन भी अर्थ पर ही आधारित है। अर्थ का असमान वितरण ही समाज के वर्ग संघर्षों के मूल में कार्य करता है। एक वर्ग धन के बल पर ऐश्वर्यमय एवं प्रतिष्ठित जीवन बिताता है तो

*1. डॉ. आशा मेहता, स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास में वैचारिकता. पृ. 168

दूसरा वर्ग धन के अभाव में दयनीय जीवन व्यतीत करता है। बेरोज़गारी की समस्या युवकों की मनःस्थिति पर बुरा प्रभाव डालती है। आर्थिक समस्याओं ने मनुष्य को पूर्णरूपेण स्वार्थी बना दिया है। समाज के उच्च वर्ग का अस्तित्व शोषण पर आधारित है। अर्थ का स्वार्थ उसे कर्तव्य तक से विमुख कर देता है। निम्न वर्ग अपनी निर्धनता और गरीबी से मुक्त होने का संघर्ष करता है। अर्थ विभाजन का असंतुलन ही श्रमिकों की दयनीय हालत का कारण बनता है। मध्यवर्ग उच्य वर्ग के स्तर तक पहुँचने की महत्वाकांक्षा से संघर्षरत है। पर अर्थाभाव उसे कहीं भी नहीं पहुँचाता। इन तीनों वर्गों की विशेषता के बारे में डॉ. रामदरश मिश्र ने अपनी किताब 'हिन्दी कहानी अन्तरंग पहचान' में बताया है -'मध्यवर्ग का स्वभाव है दिखावा करना। दिखावा उत्पन्न होता है उसकी महत्वाकांक्षा और आर्थिक विषमता के संघर्ष से।..... वह उच्चवर्ग की सी जिन्दगी के सपने देखता है, वह समाज में पद, प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य पाना चाहता है; किन्तु उसकी आर्थिक स्थिति कमज़ोर होती है, इसलिए उसके ऊँचे सपने पूरे नहीं होते। ..... उच्चवर्ग समृद्ध होने के नाते जो चाहता है वह करता है। निम्न वर्ग अवधूत है, वह अपनी अर्थ रिक्तता को ढकता नहीं । वह उसके अनुकूल अभावपूर्ण, किन्तु खुली जिन्दगी जी लेता है।' *1

मामूली व्यक्ति जब तक शोषणकारी व्यवस्था से संघर्ष करता रहेगा, तब तक समाज में तनाव पलता रहेगा। ऐसी स्थिति में पडा व्यक्ति हर चीज़ पर अपना क्रोध प्रकट करेगा। जैसे ब्रिटीश साम्राज्य

---

*1. डॉ. रामदरश मिश्र, हिन्दी कहानी अन्तरंग पहचान, पृ. 44, 45

में भारत की आर्थिक दुर्दशा ने देश में क्रांति और सुधार की भावना को अधिक बढावा दिया। भारत की आर्थिक दयनीयता के फलस्वरूप देश के नवजागरित समाज में कई नई चेतनाओं ने जन्म लिया। साहित्य भी इससे अछूता नहीं रह गया। जैसे रामस्वरूप चतुर्वेदी ने उल्लेख किया है - 'हिन्दी नवलेखन मूलतः आर्थिक और सामाजिक विषमता तथा व्यक्तित्व के विघटन का आख्यान है'*1 मतलब स्वयं लेखक तथाकथित विषम आर्थिक यंत्रणा से ग्रस्त है।

3. धार्मिक चेतना और समाज

व्यक्ति, परिवार और समाज को एकता के सूत्र में बाँधने का पुल है धर्म। श्यामधर सिंह एवं नीरजा द्विवेदी की दृष्टि में - "समाज में स्वस्थ व्यवस्था उत्पन्न करने में धर्म का अतुलनीय योग रहा है। भारतीय सामाजिक व्यवस्था की आधार-शिला तो वस्तुतः धर्म ही है।'*2 समाज में समता और एकता स्थापित करना सभी धर्मों की मूल भावना है। प्राचीन भारतीय संस्कृति का मूल तत्व धर्म रहा है। भारतीय संस्कृति के अनुसार धर्म से रहित अर्थ और काम निन्दनीय है तथा त्याज्य है। धर्म संस्कृति का सर्वोत्कृष्ट गुण है। भगवद्गीता में कहा गया है- 'यस्मात् निःश्रेय साभ्युदयप्राप्तिः सः धर्मः' अर्थात् धर्म से जीवन में उन्नति तथा कल्याण का उदय स्वीकारा गया है। भारत में धर्म के बिना जीवन की सार्थकता का कोई अर्थ नहीं माना जाता था।

---

*1. रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिन्दी नवलेखन पृ. 20

*2. 'भारतीय समाज विज्ञान समीक्षा'(पत्रिका) पृ.119

पुरुषार्थ चतुष्टय में धर्म का प्रमुख स्थान दिया गया है। धर्म राष्ट्रीयता का भी पर्याय था। भारत में बडे युद्धों को धर्म युद्ध कहके लडा गया जैसे रामायण और महाभारत के युद्ध। विश्व की महान क्रांतियाँ भी बुद्ध, ईसा, मुहम्मद आदि धर्म प्रवर्तकों द्वारा ही प्रणीत हुइ थीं। लेकिन धर्म का वह भव्य रूप बदल गया है। धर्म को आज मानवीय स्वार्थ - सन्दर्भों से जोड दिया गया है।

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध तक आकर भारतीय समाज अपनी प्राचीन विशेषताओं से मुक्त होकर पूरी तरह वर्गगत और सांप्रदायिक विषमताओं का प्रतीक बन चुका था। इसी समय ईसाई मिशनरी लोग भारत में आये। उन्होंने धर्म प्रचार के साथ ही समाज सेवा और नवीन सामाजिक विचारों का प्रचार आंरभ किया। इस नयी चेतना ने भारत के संपूर्ण जीवन, साहित्य, शिक्षा आदि को प्रभावित किया।

नयी युग चेतना एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण के परिणाम स्वरूप धर्म, ईश्वर, श्रद्धा जैसे मूल्यों में बदलाव आया है। अब धर्म का मूल मुद्दा मानव व्यक्तित्व का विकास कराना है। मानवीय गौरव की प्रतिष्ठा ही इस युग का विशेष धर्म बनता जा रहा है। इस युग में समाज, राजनीति, अर्थ और धर्म सब परस्पर पूरक हैं। आधुनिक समाज की उन्नति-अवनति में इन तत्वों का अपना-अपना योगदान है। समाज को रूप तथा दिशा देने तथा सामाजिक चेतना को गति प्रदान करने में इन तत्वों का विशेष स्थान है।

4. साहित्य में सामाजिक चेतना का प्रतिफलन

साहित्य एक चेतना का विकास कर सकता है, जो व्यक्ति को भीतरी शक्ति प्रदान कर सके। जब साहित्य यह शक्ति प्रदान कर सकता है तभी सार्थक सामाजिक परिवर्तन होगा। सामाजिक परिवेश को रहन-सहन के अनुकूल बनाने में तथा मनुष्य को एक बेहतर मनुष्य बनाने में साहित्य का स्थान ऊँचा है। डॉ. रामदरश मिश्र के शब्दों में 'सामाजिक बदलाव में साहित्य की भूमिका होती है; किन्तु इसका कोई साक्ष्य नहीं है कि अमुक रचना से ही परिवर्तन या क्रांति हुई। बुनियादी बात यह है कि साहित्य सामाजिक बदलाव की पहचान करता है।'*1.

अब साहित्य में कल्पना या स्वर्णिम अतीत के इतिहास की झांकी मात्र नहीं, बल्कि लेखक के चारों ओर फैला संसार, समाज और परिवेश चित्रित होने लगे। लेखकों का ध्यान अपने समाज की बहुविध समस्याओं की ओर गया, जैसे राजनीति, अर्थव्यवस्था, प्रेम और विवाह, नई सामाजिक व्यवस्था में टूटते पारिवारिक संबन्ध, महानगरीय जीवन, व्यक्तित्व की स्वतंत्रता आदि। साहित्य के ध्येय के बारे में डॉ. रमाकान्त वर्मा ने जो बात बतायी है, वह यहाँ उल्लेखनीय है - 'साहित्यकार का काम सत्ताधीशों के तलुए चाटना नहीं, वरन् युग के सत्य को चित्रित करना है। समाज में व्याप्त असंगतियों और विसंगतियों पर कलम की नोक रखनी है इतिहास को वस्तुपरक दृष्टि से देखना है तथा जन संघर्ष को गतिशील बनाना है। यही साहित्य का श्रेय और प्रेय है।'*2

---

*1. 'संचेतना' (पत्रिका) मार्च, 1979 पृ. 87

*2. सरस्वती (पत्रिका) नवम्बर, 1980 पृ. 221

पुरानी मान्यताओं की व्याख्या भी साहित्य में नए ढंग से होने लगा है। इस प्रकार साहित्य व्यक्ति को इस धरती के सच्चे मनुष्य के रूप में स्थापित करने लगा। फलतः साहित्य ही समाज को परंपरा और रूढ़ियों के प्रदूषण से बचाता है। समाज को दिशा देने का कार्य भी साहित्य का है; क्योंकि साहित्य समाज का दर्पण ही नहीं, वरन् निर्देशक भी है।

ग - हिन्दी कथा साहित्य में सामाजिक चेतना का आविर्भाव

कथा की परंपरा अत्यन्त प्राचीन है। कथा कहने और सुनने की वृत्ति मानव की आदिम सहज वृत्तियों से है। इससे ही इस शब्द की पुरातनता का अनुमान किया जा सकता है। परंतु 'कथा' शब्द का अर्थ सब विषयों एवं सब सन्दर्भों में एक नहीं रहा है। दर्शन शास्त्र में 'कथा' शब्द प्रायः वाद या शास्त्रार्थ के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। मनु ने चर्चा के अर्थ में कथा शब्द का प्रयोग किया है - 'जो जो बाह्मणों को अच्छा लगे, वह वह द्वेषरहित होकर उनको दिया जाए और ब्रह्मनिरूपण संबन्धी कथा की जाए, क्योंकि यह पितरों को प्रिय है।'*1

हिन्दी साहित्य में महाकवि तुलसीदास ने 'कथन' अथवा 'बातों' के अर्थ में 'कथा' शब्द का प्रयोग किया है। रावण युद्ध प्रसंग में कहा गया है -

'तिन्हाही ग्यान उपदेस रावण।
आपुन मंद कथा अति पावना।' *2

---

*1. सं. मन्नालाल अभिमन्यु, मनुस्मृति, पृ. 127

*2 गोस्वामी तुलसीदास; रामचरितमानस (लंका काण्ड दोहा - 78)

कथा या कथा साहित्य के क्षेत्र विस्तार भी अद्‌भुत है। विश्व के अधिकांश साहित्य जैसे नाटक, उपन्यास, कहानी, रेखा-चित्र, रिपोर्ताज और प्रबन्ध काव्य के रूप में सारा साहित्य कथा साहित्य ही है। निष्कर्ष रूप में बता सकते हैं कि परिणाम युक्त घटना का क्रमबद्ध वर्णन ही 'कथा' की संज्ञा पाता है। इस वर्णन का आधार सत्य होने पर इतिहास या ऐतिहासिक काव्य का सृजन होता है और कल्पना या सत्य एवं कल्पना का मिश्रण होने से कहानी, आख्यायिका, उपन्यास, नाटक और प्रबन्ध काव्य की रचना होती है।

कहानी मानव जीवन का वह खण्ड-चित्र है जिसकी कोई सीमा-रेखा नहीं। प्रसिद्ध पाश्चात्य समीक्षक एडगर एलन पो का कथन है कि कहानी एक ऐसा आख्यान है जो इतना छोटा होता है कि एक ही बैठक में पढा जा सके, जो पाठकों पर प्रभाव डालने केलिए लिखा गया हो जिसमें ऐसा कोई प्रसंग न हो जो प्रभाव को अग्रसर करने में सहायक न हो। अज्ञेय ने कहानी की परिभाषा यों दी है कि कहानी जीवन की प्रतिछाया है और जीवन स्वयं एक अधूरी कहानी है, शिक्षा है, जो उम्र भर मिलती है और समाप्त नहीं होती।

उपन्यास कहानी का ही एक आधुनिक रूप है। अर्नेस्ट ए. बकर के अनुसार 'उपन्यास गद्य में लिखी गई एक कल्पनाजनित कथा है जिसके द्वारा जीवन की व्याख्या करता है।'*1 उपन्यास के संबन्ध में प्रेमचन्द ने लिखा है - 'मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र

*1. "Novel is the interpretation of human life by means of fiction narrative in prose". The History of English Novel, E.A. Baker, Vol. I Page 15

समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल तत्व है।'*1

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में अंग्रेज़ी शासन तथा सभ्यता के प्रभाव से जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक आन्दोलन-सा आ रहा था। देश में राजनैतिक सामाजिक और सांस्कृतिक नवचेतना अंकुरित हो रही थी। भारतवासियों का संपर्क अंग्रेज़ी शिक्षा और साहित्य से बढ़ने के फलस्वरूप देशी भाषाओं और उनके साहित्यों में पुनरुत्थान के लक्षण उभर आये। साहित्यकारों ने अपनी कला द्वारा जन कल्याण का बीडा उठाया और वे अपनी कृतियों में एक नवीन उत्साह, एक अपूर्व आदर्श और एक अद्‌भुत जागृति का सन्देश लेकर अग्रसर होने लगे। इस नवीन चेतना के बारे में श्रीकृष्णलाल ने कहा है -'भारत का सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक इतिहास यह स्पष्ट कर देता है कि हमारे यहाँ बाह्य आचारों और उपकरणों ने वास्ताविक धर्म और साहित्य को ढक, सा लिया।..... हमारी कविता में छन्दों की गति और अति मिलती है..... परंतु वास्ताविक कवित्व का पता नहीं। परंतु जब पश्चिमी सभ्यता के संपर्क से नया ज्ञान, नए आदर्श, नए विश्वास और नए संदेह जहाजों से लदकर हमारे देश में आने लगे, तब हमारी आँख खुली.....।*2 पत्र - पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों तथा कविताओं द्वारा राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक आदि समस्याओं पर प्रकाश डाला जाने लगा और जनता में समाज सुधार, देश-भक्ति और राष्ट्र -

---

*1. प्रेमचन्द, कुछ विचार पृ. 38

*2. श्रीकृष्णलाल - आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृ. 11

प्रेम की भावना का सुधार होने लगा। हिन्दी कथा साहित्य के विकास में सामाजिक चेतना की पुनरुत्थानवादी, सुधारवादी विचारधारा और राष्ट्रीय चेतना की पुनरुत्थानवादी सुधारवादी विचारधारा का महत्वपूर्ण योगदान था।

जैसे बताया गया है आधुनिक हिन्दी साहित्य भारतीय नव जागरण का एक महान 'यज्ञ' है। भारतेन्दु बाबु हरिश्चन्द्र नए समाज दर्शन के सूत्रधार बने। इन्होंने सामंती शासन और अंग्रेज़ों की गुलामी का विरोध करते हुए भारतीय समाज को एक नया जीवन दर्शन दिया। सभी पुरातन सडी-गली सामाजिक दृष्टियों को बदलने की प्रेरणा दी। उन्होंने भारतीय समाज के सामाजिक परिवर्तन में भाषा की गंभीर भूमिका पर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने बताया -

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिट तन हिय को सूल।।' *1

भारतेन्दु के साथ बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिका दत्त व्यास, देवकीनन्दन खत्री, महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि ने भारतीय समाज को एक व्यावहारिक और वैज्ञानिक चिन्तन प्रधान जीवन दर्शन देने केलिए सक्षम रचनाएँ कीं। संस्कृति पर पड़े कलंक को धोने केलिए उन्होंने साहित्य को माध्यम बनाया। फलस्वरूप साहित्य में कोरी उपदेशात्मकता ही कायम रही। परिणामतः लोग ऐसी रचनाओं से ऊब गए।

---

*1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, भारतेन्दु ग्रन्थावली - दूसरा खंड, पृ. 731.

1. हिन्दी कहानी साहित्य और समाज

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल की सीमा तिथि एवं पहली मौलिक कहानी किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमति' की प्रकाशन तिथि दोनों सन् १९०० माना जाता है। श्रीकृष्णलाल ने 'हिन्दी कहानियाँ' नामक ग्रन्थ की भूमिका में स्पष्ट ही उल्लेख किया है - ' प्रयाग की सुप्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'सरस्वती' और काशी से श्री माधवप्रसाद मिश्र द्वारा संपादित 'सुदर्शन' के प्रकाशन के साथ ही साथ सन् १९०० ई में आधुनिक हिन्दी कहानी का जन्म हुआ था'*1 हिन्दी कहानी को इंशा अल्लाखां की 'रानी केतकी की कहानी', राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द की 'राजा भोज का सपना' और भारतेन्दु की एक 'अपूर्व स्वप्न', बंग माहिला की 'दुलाईवाली', जयशंकर की 'ग्राम' से विषयवस्तु और कथान्विति की दृष्टि से मुक्त कर चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और प्रेमचन्द को जो आंरभिक संघर्ष करना पडा, यह बात यहाँ विशेष उल्लेखनीय है।

नई कहानी का आरंभ सभीक्षक चन्दधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था' कहानी से माना जाता है। परन्तु यहाँ श्री जैनेन्द कुमार का मन्तव्य ध्यान देने योग्य है - 'उसने कहा था' एक संयोग हो सकती है। यह कि स्वयं गुलेरी जी की बाकी दो कहानियाँ निष्प्रभ और निस्पन्द है, मानो उनमें कुछ कहने को न हो, इस बात का प्रमाण है। सच यह है कि हिन्दी उपन्यास की भाँति हिन्दी कहानी भी प्रेमचन्द से प्रतिष्ठित हुई।' *2

*1. श्रीकृष्णलाल - हिन्दी कहानियाँ (भूमिका) पृ.1.

*2. जैन्दकुमार, बाईस हिन्दी कहानियाँ (भूमिका) पृ. 3.

पूर्व प्रेमचन्द युग सस्ता मनोरंजन, राष्ट्रीयता और उपदेशात्मकता का युग है। अतः इस काल में लिखी गई रचनाएँ या तो घटना प्रधान थीं या कोरी उपदेशात्मक रही थी।

हिन्दी साहित्य में प्रेमचन्द का आगमन एक युगान्तर था। उन्होंने साहित्य को यथार्थ मानव से जोड दिया। डॉ. पुष्पपाल सिंह के शब्दों में - 'प्रेमचन्द ने सर्वप्रथम कहानी को काल्पनिकता से मुक्त कर सामाजिकता से संसक्त कर दिया'। *1 दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि प्रेमचंद ने जीवन की यथार्थों से जुडी हार्दिक और मानसिक अनुभूतियों को कहानी में जोडा था। यहाँ उनके बारे में डॉ. प्रेमचन्द नारायण सिन्हा का कथन विशेषतः उल्लेखनीय है - 'प्रेमचन्द के द्वारा चुनी हुई ज़मीन हिन्दुस्तान की संस्कृति, आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं से सीधा सरोकार रखती है। अतः अनेक लेखकों पर उनका प्रभाव पडना अत्यन्त स्वाभाविक क्रिया के रूप में होता है।'*2 'पूस की रात' और 'कफन' के द्वारा उन्होंने कहानी को जीवन के यथार्थ के धरातल पर खडा कर दिया तो प्रसाद ने प्रथम बार कहानी में सांकेतिक भाषा और सूचक तत्व जोडा। 'आकाशदीप' उनकी श्रेष्ठ रचना है। कहानियों में बिम्ब की भूमिका यहीं से देख सकते हैं।

प्रेमचन्द ने हिन्दी कथा को कहानी ही नहीं बनाया भारतीय जन-जीवन की सामाजिक अभिव्यक्तियों का माध्यम भी बनाया।

---

*1. पुष्पपाल सिंह, कमलोश्वर - कहानी का सन्दर्भ (भूमिका) पृ. VIII

*2. प्रेमचन्द नारायण सिन्हा, आधुनिक हिन्दी साहित्य में समसामयिक जीवन की अभिव्यक्ति, पृ. 160

डॉ. रामदरश मिश्र के शब्दों में - ' वास्तव में हिन्दी कहानी प्रेमचन्द तक उसी रूप में दिखाई पडती है जिस रूप में पश्चिमी कहानी चेखव के आने तक थी।'*1

प्रेमचन्द के समय में युगीन परिस्थितियों में विशेष बदलाव शुरू हो गया। औद्योगिक क्रांति भौतिकवाद को बढावा देने लगी। ग्रामीण औद्यौगिक केन्द्र खत्म होने से कारीगर बेकार हो गए। गाँवों में बेकारी बढ़ने से नौकरी की तलाश के उद्देश्य से लोग शहर की ओर आने लगे। इनमें से कुछ सरकारी नौकरी में आ गये, कुछ छोट-छोटे व्यापार शुरू कर दिये। इस प्रकार समाज में एक नये वर्ग मध्यवर्ग का उदय हुआ। हिन्दी साहित्य में मध्यवर्गीय जीवन की अभिव्यक्ति की पंरपरा प्रेमचन्द से शुरू होती है। उनकी कहानियों में मुख्य रूप से सांमतवाद और महाजनी सभ्यता का संघर्ष, देशी-विदेशी उद्योगपतियों की टकराहट, अर्थ का दबाव आदि मिलते हैं, जैसे 'पंचपरमेश्वर', 'बूढ़ी काकी', 'पूस की रात', 'कफन', 'बडे घर की बेटी', 'ईदगाह', 'नमक का दारोगा' आदि।

उनके समय में साहित्यकारों ने यह अनुभव किया कि अब देश में एक ऐसे धर्म की आवश्यकता है जो कि देश की सारी कुरीतियों को दूर करे। इस धर्म की स्थापना केलिए कथा साहित्य के माध्यम से प्रेमचन्द ने अथक प्रयास किया। प्रेमचन्द की सबसे बडी विशेषता यह है कि उन्होंने जिस गाँव का वर्णन अपनी कहानी में किया है, भारतीय गाँव

---

*1. रामदरश मिश्र, हिन्दी कहानी अंतरंग पहचान (भूमिका) पृ. 4

आज इतने सालों बाद भी वहीं का वहीं खडा है। उनका सच आज भी सच है। कटु सच है।'*1 उनकी कहानियों की दुनिया में अनेक तरह के पात्र हैं और उनकी अनेक समस्यायें हैं। उनकी दुनिया अन्य हिन्दी कहानीकारों की दुनिया से आधिक वैविध्यपूर्ण और जीवन्त है। डॉ. रामदरश मिश्र ने बताया है - 'वे पहले कहानीकार हैं जिनमें मोपसाँ और चेखव की आत्मा एक साथ - बोल उठी है।'*2

अन्ततः हम कह सकते हैं कि प्रेमचन्द पहले कहानीकार थे जिन्होंने कहानी को रोमांटिक काल्पनिक उपदेशवृत्ति से बाहर निकालकर उसे अनुभूतियों से युक्त कर दिया, जीवन की यथार्थ समस्याओं को कहानियों का विषय बनाया, दलित पीडित ग्रामीण जनता को वाणी प्रदान की।

प्रेमचन्द की धारा में लिखनेवाले कहानीकारों में विश्वंभर शर्मा कौशिक और सुदर्शन के नाम उल्लेखनीय हैं। दोनों ही लेखकों की कहानियाँ आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की कहानियाँ हैं। कौशिक की 'ताई' , 'रक्षा - बन्धन', सुदर्शन की 'हार की जीत', 'अदर्श बदला' आदि।

प्रेमचन्द युग के बाद कहानियों का मूलाधार मनोविज्ञान बना जिसे अज्ञेय जैनेन्द्र और इलाचन्द्र जोशी ने प्रतीकों के माध्यम से अभिव्यक्त किया। जहाँ जैनेन्द्र और अज्ञेय ने प्रेमचन्द से ठीक भिन्न रूप में हिन्दी की कथा पंरपरा को एक नया मोड दिया, वहाँ मार्क्स से प्रभावित होकर यशपाल ने प्रेमचन्द की परंपरा को आगे बढाया। जैसे 'फूलों का

1*. आजकल (पत्रिका) जनवरी 1987, पृ. 37

*2. डॉ. रघुवर दयाल वार्ष्णेय, हिन्दी कहानी बदलते प्रतिमान पृ. 41

कुर्ता', 'परदा' आदि। बदलते हुए व्यक्ति, परिवार और समाज के निशान नयी कहानी में उभर आए हैं। टूटते बदलते समाज के संबन्ध की प्रक्रिया यशपाल, अमृतराय, अज्ञेय और जैनेन्द से प्रांरभ होती है।

स्वाधीनता के बाद की हिन्दी कहानी के विषय में यदि कहा जाए तो वह स्वाधीन भारत के व्यक्ति, समाज और राष्ट्रीय जीवन के संपूर्ण गुण-दोष का चित्रण है। इस काल के मानव जीवन में मूल्यों के विघटन, आर्थिक संघर्ष, विचारों और संस्कारो का संघर्ष उभर आता है। वैसे डॉ. रामदरश मिश्र के शब्दों में 'नयी कहानी' सामूहिक रूप में अनुभूति के स्तर पर इसी बदले हुए सामाजिक जीवन की पहचान की कहानी है।'*1

नयी कहानी ने नारी की पूरी गरिमा को पहचाना है। युद्ध, स्वतंत्रता, औद्योगीकरण और शहरीकरण की परिस्थितियाँ नारी के मानसिक गठन को बदलाया है। यशपाल, रांगेय राघव, कृष्णा सोबती, मन्नू भंडारी जैसे कथाकारों ने बदली परिस्थिति का चित्रण किया है। श्री राजेन्द यादव कहते हैं, 'आज का कथाकार व्यक्ति को, उसकी समग्रता में देखने का आग्रह करता है। व्यक्ति को उसके सामाजिक परिवेश, मानसिक अर्न्तद्वन्द्वों तथा व्यावहारिक जीवन के तकाजों और आवश्यकताओं की एक संश्लिष्ट प्रक्रिया के रूप में देखना चाहता है।' *2

---

*1. डॉ. रामदरश मिश्र, हिन्दी कहानी अंतरंग पहचान, पृ. 58

*2. राजेन्द्र यादव, आज की कहानी परिभाषा के नये सूत्र, पृ.76

नरेश मेहता के शब्दों में - 'कहानी अभिव्यक्ति होती है, घटना मात्र नहीं। आज की कहानी, फार्मूला या सोद्देश्य कहानीकला से आगे बढ़ चुकी है - साहित्य स्वयं एक मूल्य होता है; क्योंकि उसमें जीवन परिलक्षित होता है।'*1 आज की कहानी मानव मन का अध्ययन, सामाजिक परिवेश में उभरते मध्यवर्ग की समस्यायें, उसकी जीवन धारा सबको चरित्र - चित्रण से प्रवाहित की है। स्वातंत्र्योत्तर लेखकों ने सामाजिकता को अपनी रचना चेतना में अपनाया है, वह व्यापक मानवीय संवेदना की सामाजिकता है। यहाँ डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का कथन उचित ही लगता है - 'हमारे नये कहानीकारों की प्रतिबद्धता और सामाजिक दायित्व के निर्वाह की भावना का विस्तार अत्यन्त व्यापक है। आज की कहानी ने विस्तृत जीवन परिवेश को लिया है और उसके बहु विविध - पक्षों के उभरे दबे कोनों को उजागर करने का प्रयत्न किया है।'*2

पूर्ववर्ती लेखकों के सामने ऊँचे आदर्श थे; समस्यायें थीं। उनके कच्चे माल को प्रेमचन्द ने परिष्कृत किया था। प्रेमचन्द के बाद जैनेन्द्र, यशपाल, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, अज्ञेय, अश्क, भगवती चरण वर्मा आदि ने इसे और भी समृद्ध किया। जैसे यशपाल ने बदलते हुए राजनैतिक परिवेश को चित्रित करने में प्राचीन मान्यताओं को हटाकर सामयिक अनिवार्यताओं को सामने ला रखा। जैनेन्द्र और अज्ञेय ने

---

*1. नरेश मेहता, 'तथापि' (निवेदन) दिसम्बर, पृ.1

*2. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, आधुनिक कहानी का परिपार्श्व, पृ. 116

प्रेमचन्द के यथार्थवाद में जो मनोवैज्ञानिक अन्तद्वर्न्द्व की कमी थी, उसी को प्रस्तुत करने का प्रयास किया। अश्क और चन्द्रगुप्त विद्यालंकार प्रेमचन्द के जैसे ही यथार्थवादी कहानीकार थे। विष्णुप्रभाकर और अमृतलाल नागर ने सामाजिक भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज़ उठाकर उसे नये रूप में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया। समष्टिगत चिन्तन पर आधारित कहानियाँ लिखनेवाले प्रगतिशील कहानीकारों में रांगेय राघव, भीष्म साहनी, प्रभाकर माचवे आदि प्रमुख हैं। इनकी दृष्टि में कलाकार निरा व्यक्ति नहीं, सामाजिक भी है और निस्सन्देह उसका समाज के प्रति भी दायित्व है। व्यक्ति-व्यक्ति के बीच बदलते संबन्धों को मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव और कमलेश्वर ने अंकित किया है। नवीन आर्थिक परिस्थियों से संघर्ष करने वाले मध्यवर्गीय समाज के जीवन को अमरकान्त, निर्मलवर्मा आदि ने प्रस्तुत किया है। व्यक्ति के बिना समाज का निर्माण संभव नहीं, इसे धर्मवीर भारती ने रेखांकित किया है। घटनाहीन कहानी को नेरेश मेहता ने चित्रित किया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि भारत में ही नहीं विश्व भर में बहुचर्चित विधा के रूप में कथासाहित्य का स्थान प्रतिष्ठित है। कहानी के चरम उद्देश्य के रूप में आज मानवता और मानव मूल्य का स्थान है। आज उद्देश्य रहित कहानियाँ भी लिखी जाती हैं। जो भी हो कथा ऐसी गद्य रचना है जिसमें जीवन की किसी एक स्थिति का सरस सजीव चित्रण होता है।

2. हिन्दी उपन्यास साहित्य और समाज

कहानी की तरह उपन्यास का भी उद्‌भव उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ था। हिन्दी उपन्यास के प्रारंभिक युग खत्री - गहमरी - गोस्वामी युग कहा जाता है। आरंभ काल के उपन्यासों में मनोरंजन को महत्व मिला था। प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास को कोरी काल्पनिकता से मुक्त करके मानव जीवन की यथार्थ समस्याओं से जोड दिया। डॉ. सुरेश सिन्हा के शब्दों में - 'प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यास को सर्वथा नवीन दिशा की ओर गतिशील किया और यथार्थ के कठोर धरातल पर ला खडा किया जिससे उपन्यास साहित्य मानव जीवन का वास्तविक प्रतिबिम्ब सिद्ध हो सका।' *1 प्रेमचन्द की रचनाओं में व्यक्तिवादी विचारधारा कम और समाज सुधारवादी भावना ज्यादतर मिलता है। क्योंकि उन्होंने व्यक्ति को एक सामाजिक इकाई ही माना है। डॉ. एन. के. जोसफ ने इसके बारे में कहा है 'प्रेमचन्द ने व्यक्ति सत्य से बढ़कर समाज सत्य को महत्व दिया है।'*2 उपन्यास को मानव चरित्र के चित्र बनाने की चेष्टा प्रेमचन्द ने की थी। वे चरित्र पर ज़ोर देना चाहते थे, किंतु उनके उपन्यास चरित्र प्रधान से भी बढ़कर समस्या प्रधान बन गये हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में सामाजिक समस्याओं का चित्रण भी किया है, साथ ही साथ उसका समाधान भी प्रस्तुत किया है-जैसे 'प्रेमाश्रम', 'गबन' आदि प्रायः सभी उपन्यासों में सामाजिक सुधार केलिए कोई संस्था स्थापित करते हैं। कुलमिलाकर हम कह

*1. डॉ. सुरेश सिन्हा, हिन्दी उपन्यास उद्‌भव और विकास, पृ. 181

*2. डॉ. एन. के. जोसफ, हिन्दी उपन्यासों में व्यक्तिवादी चेतना, पृ. 54

सकते हैं कि उनका जीवन संबन्धी दृष्टिकोण व्यष्टि से समष्टि की ओर नहीं, समष्टि से व्यष्टि की ओर था। डॉ. इन्द्रनाथ मदान की राय में हिन्दी उपन्यास में आधुनिकता के बोध की शुरूआत 'गोदान' से मानी जा सकती है। हिन्दी के अधिकांश उपन्यासों में आधुनिकता का बोध नगर बोध से जुडा हुआ है, नगरीकरण की प्रक्रिया से जुडा हुआ है। इस विशेषता के बारे में डॉ. ज्ञान अस्थाना ने लिखा है - 'प्रेमचन्द पहले कथाकार थे जिन्होंने अपने नारी पात्रों को सहज मानवीय रूप में चित्रित किया। अन्यथा सदियों से भारतीय नारी को कभी मनुष्य नहीं समझा गया।'*1 जनवादी दृष्टि और जन भाषा को अपनाकर हिन्दी उपन्यास को प्रस्तुत करने की कोशिश उन्होंने की। प्रेमचन्द के निधन पर उनको श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने कहा था - 'हमारा देश जब स्वाधीन होगा, जब यहाँ का ग्रामीण समाज बेगार, गरीबी, शोषण और अशिक्षा से मुक्त हो जाएगा, तब लोग यह कल्पना भी नहीं कर पायेंगे कि कभी भारत का किसान और मज़दूर उस हालत में भी रहा था। तब प्रेमचन्द के उपन्यास और कहानियाँ क्लासिक रूप में पढ़े जायेंगे और उनसे ही पता चलेगा कि तत्कालीन समाज कैसा था।'*2

प्रेमचन्दोत्तर युग में मार्कसवादी विचारधारा के आधार पर समाजवादी उपन्यास लिखे गए। यशपाल, रांगेय राघव, भैरवप्रसादगुप्त जैसे उपन्यासकारों ने भी इस चिन्तनधारा को अपनाया। मार्क्सवादी विचार

---

*1. डॉ. ज्ञान आस्थाना, हिन्दी कथा साहित्य समकालीन संदर्भ, पृ. 113

*2. अक्षयकुमार जैन, याद रही मुलाकातें पृ. 100

धारा से हटकर सामाजिक संघर्ष के चित्रण करनेवाले थे - भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, विष्णुप्रभाकर आदि। समाज और व्यक्ति के बाह्य संघर्षों से अलग रहकर व्यक्ति के अन्तर्मन का वर्णन कुछ उपन्यासकारों का मुख्य विषय बना। जैसे - अज्ञेय, इलाचन्द जोशी, जैनेन्द्र आदि।

फणीश्वरनाथ रेणु, नागार्जुन, शैलेश मटियानी, शिवप्रसाद सिंह जैसे उपन्यासकारों ने आंचलिकता को हिन्दी उपन्यास में प्रतिष्ठित किया। प्रेमचन्द और रेणु के ग्रामीण चित्रण के अन्तर पर डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने लिखा है - 'प्रेमचन्द के उपन्यासों की एक बहुत बडी सीमा यह थी कि उन्होंने व्यक्तियों की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जितना समस्याओं की ओर। रेणु ने समस्याओं के साथ - साथ व्यक्ति का भी अद्‌भुत समन्वय करने की चेष्टा की है और यही कारण है कि इसमें स्थूलता नहीं सूक्ष्मता की अभिव्यक्ति कलात्मक ढंग से हुई है, जो इसे प्रेमचन्द के गाँव चित्रण से अलग करती है।'*1

हिन्दी में कुछ उपन्यास विदेशी परिवेश में भी लिखे गए। डॉ. देवराज ने दावा किया था कि अज्ञेय का 'अजय' की डायरी' हिन्दी का पहला अन्तर्राष्ट्रीय उपन्यास है। अमेरिका, रूस, जापान, जर्मनी, इंगलैंड, चेकोस्लोवाकिया जैसे राष्ट्रों के परिवेश में भी हिन्दी उपन्यास लिखे गए। ऐसे उपन्यासकारों में निर्मल वर्मा, अज्ञेय, उषा प्रियंवदा, गिरीश अस्थाना, मोहन राकेश आदि आते हैं।

---

*1. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, बीसवीं शताब्दी का हिन्दी साहित्य - नए सन्दर्भ, पृ.269

स्वतंत्रता के बाद समाजवाद के स्थान पर अवसरवाद को स्थान मिला। प्रशासन के भ्रष्टाचार को देखकर व्यंग्य परक उपन्यास भी लिखे गए। ऐसे उपन्यासकारों में श्रीलाल शुक्ल, नागार्जुन और हरिशंकर परसाई का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। निष्कर्षतः बताया जा सकता है कि नई युग चेतना, क्षेत्रीय कथावस्तु का चयन, विविधता और नवीनता के कारण उपन्यास साहित्य की अत्यधिक प्रभावशाली विधा है जिसमें संपूर्ण जीवन का अंकन संभव होता है।

घ- हिन्दी कथा साहित्य महिला कथाकारों की रचनाओं में सामाजिक चेतना

हिन्दी कथा साहित्य का प्रारंभ भारतेन्दु युग में तो हुआ, किन्तु उस क्षेत्र में महिलाओं का प्रवेश बाद में हुआ। द्विवेदी युग के प्रारंभ में सर्वप्रथम बंगमहिला ने इस ओर ध्यान दिया और तब से अब तक अनेक महिलाओं ने उस क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। परिणाम में अल्प होने पर भी महिलाओं का कथा साहित्य उपेक्षणीय नहीं है। किंतु अब तक उसकी प्रायः उपेक्षा ही हुई है। डॉ. सावित्री सिन्हा ने महिलाओं की कृतियों की उपेक्षा का कारण बताते हुए लिखा है - 'भारतीय जीवन - व्यवस्था में जिस प्रकार पौरुष बल के समक्ष नारीत्व की सरलता लुप्त हो गई, उसी प्रकार साहित्य के क्षेत्र में भी पुरुषों द्वारा रचित साहित्य की विशालता एवं गहनता में नारी द्वारा रचित साहित्य उपेक्षित ही नहीं, प्रत्युत लुप्त हो गया। *1 'इंडिया

---

*1. डॉ. सावित्री सिन्हा, मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ पृ. 296

टुडे' के साहित्य वार्षिकी १९९६ में आज़ादी के ५० वर्ष और हिन्दी महिला लेखन शीर्षक परिचर्चा में अल्का सरावगी, चित्रा मुद्गल, मृणाल पांडे, मृदुला गर्ग, मेहरुन्नीसा परवेज़ तथा सूर्यबाला ने यह विचार व्यक्त किये हैं कि महिला लेखन का सही महत्व नहीं आंका गया है। अनिता देसाई ने अपने एक लेख में भारतीय महिलाओं के लेखन की विशेषताओं के बारे में यों बताया है 'पुरुष लेखन में प्रमुखतः कार्य व्यापार, अनुभव तथा उपलब्धि होगी तो महिला लेखन में विचार, भाव - प्रवणता और तीव्र संवेदन की प्रमुखता होगी।'*1

1. स्वतंत्रता के पूर्ववर्ती महिला कहानीकारों का समाज

महिलाओं द्वारा रचित कथा साहित्य के प्रारंभ काल की सीमा सन् १८६८ से १९२७ तक है। सामाजिक परिस्थितियों की दृष्टि से प्रस्तुत काल विशेष महत्वपूर्ण है। इस युग में एक ओर ईसाई मिशनरियों ने और दूसरी ओर राजा राममोहन राय द्वारा स्थापित 'ब्रह्मसमाज', स्वामि दयानन्द के 'आर्य समाज', 'भारतीय दलित जाति संघ' आदि समाज सुधारक संस्थाओं ने पददलित पीडित जनता में जागृति उत्पन्न की। फलस्वरूप लेखकों ने प्रतिक्रियावादी चिन्तन पद्धति को अपनाया।

हिन्दी की प्रांराभिक कहानी लेखिकाओं में श्रीमती बंगमहिला ही एकमात्र प्रमुख लेखिका है जिनका नाम हिन्दी साहित्य में आदर के

*1. I do accept however that women writings tend to place their emphasis differently from men that their values are likely to differ. Where as a man is concerned with action experience & achievement, a woman writer is more concerned with thought, emotion & sensation.
Anitha Desai-Indian Express Sunday 10 June 1984 .

साथ लिया जाता है। बंगमहिला की रचनाएँ ' सरस्वती', 'कन्या मनोरंजन' आदि सामयिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई थीं, जिनका संग्रह आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा संपादित 'कुसुम' संग्रह में हुआ है। उनकी अधिकांश कहानियाँ अनूदित हैं, मौलिक रचनाएँ दो हैं - 'दुलाईवाली' और 'भाई - बहिन'। ये दोनों सामाजिक कहानियाँ हैं। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल ने उनकी दुलाईवाली कहानी में 'इतिवृत्त की कलात्मक सजावट' की प्रशंसा करते हुए इसे हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी माना है *1

बंगमहिला की पीढ़ी के अन्य प्रमुख महिला कहानीकार हैं - यशोदा देवी, प्रियंवदा देवी, शारदाकुमारी देवी आदि। इनकी कहानियों को पढने से इसका पता चलता है कि लेखिकाओं ने कथा रचना केलिए सीमित विषय - सामग्री अपनाई है। उन्होंने नारी जीवन संबन्धी कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें विवाह - विषयक समस्याओं के निरूपण को प्राथामिकता दी गई है।

इस युग की उपन्यास लेखिकाओं ने सामाजिक और धार्मिक मर्यादाओं के प्रति श्रद्धा व्यक्त की है, विद्रोह अथवा क्रांति उनका लक्ष्य नहीं है। उनके उपन्यासों का लक्ष्य नारी को परिवार और समाज के प्रति धर्म पालन की शिक्षा देना रहा है। इस काल के प्रमुख महिला उपन्यासकार सरस्वती गुप्ता, हेमन्तकुमारी चौधरी, रुक्मिणी देवी आदि थी।

---

*1. लक्ष्मी नारायण लाल - हिन्दी कहानियाँ की शिल्पविधि का विकास - पृ. 63

विकासकालीन महिला कथा साहित्य की रचना सन् १९२४ से १९४७ तक हुई थी। इस युग की कहानियों और उपन्यासों में समकालीन राजनीतिक, सामाजिक और अन्य परिस्थितियों का व्यापक प्रभाव मिलता है। उस समय गाँधी जी के नेतृत्व में जनता सामूहिक रूप से अंग्रेज़ों की नीतियों से असहयोग करने लगी। समाज अर्थ व्यवस्था के आधार पर अनेक वर्गों में विभक्त हो गया। जैसे - मध्यवर्ग, पूंजीपतिवर्ग, सामन्तवर्ग, श्रमिक वर्ग और दलित वर्ग। मध्यवर्ग की प्रमुख समस्या नारी से संबन्धित थी। उस समय नारी एक हद तक स्वतंत्र हो चुकी थी। विधवा विवाह का समर्थन किया जाने लगा। पर्दा प्रथा का विरोध किया गया। इस प्रकार मध्यवर्ग पाश्चात्य शिक्षा के परिणामस्वरूप तेज़ी से प्रगति की ओर बढ़ रहा था। कृषि का महत्व बहुत कम हो गया था। अनेक कृषक अपनी भूमि बेचकर नगर में मज़दूरी करने लगे थे। इस युग में न केवल किसानों-मज़दूरों की समस्या ही प्रधान रही, बल्कि मध्य वर्ग की बेकारी भी आर्थिक क्षेत्र की मुख्य समस्या बन गई।

स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेनेवाली नारियाँ, शोषक ज़मीन्दार, साहूकार, पूँजीपति, शोषित मज़दूर, किसान, मध्यवर्ग आदि साहित्य के प्रमुख आधार बने। विधवा विवाह, संयुक्त परिवार, दहेज प्रथा आदि समाज की अनेक समस्यायें भी साहित्य का प्रतिपाद्य बन गयीं। पाश्चात्य साहित्य के मूल तत्व संघर्ष और दुःखान्त को साहित्य में अपनाया गया। इस काल के प्रमुख महिला कहानीकार हैं - श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान, उषादेवी मित्रा, कमला चौधरी, चन्द्रकिरण सौन रक्सा, तेजरानी पाठक, तारा पांडे आदि।

सुभद्राकुमारी चौहान

श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान की अधिकांश कहानियाँ नारी जाति की विभिन्न समस्याओं और भावनाओं का अंकन करनेवाली परिवारिक और सामाजिक कहानियाँ हैं। उनकी कहानियों में राष्ट्र-प्रेम, नारी - स्वातंत्र्य, नारी जीवन के विविध पहलू तथा जीवन के दुःख और रोष अभिव्यक्त हुए हैं। जैसे 'किस्मत', 'कदम्ब के फूल', 'वेश्या की लडकी', 'अभियुक्त', 'उन्मादिनी', 'होली', 'भग्नावशेष' आदि।

सुभद्रा जी के द्वारा लिखित कहानियाँ प्रायः दुखपूर्ण हैं। उन्होंने अनेक कहानियों के माध्यम से विधवा के पुनर्विवाह की समस्या, कुमारी द्वारा स्वेच्छा से पति वरण की समस्या आदि का चित्रण किया है। इन कहानियों में उन्होंने नारी की अधिकार सजगता की ओर विशेष ध्यान दिया है। सुभद्रा जी के बारे में उर्मिला गुप्ता का कथन उचित ही है - 'नारी जाति के अधिकारों के प्रति समाज को सजग करने में सामाजिक सम्मान के स्वस्थ मानदण्ड निर्धारित करने में और राष्ट्रीय भावना को निर्मल एवं पावन बनाने में उनका योगदान उल्लेखनीय है।' *1

उषादेवी मित्रा

श्रीमती उषादेवी मित्रा ने अनेक उपन्यास और कहानियों के द्वारा हिन्दी साहित्य को संपुष्ट किया है। उन्होंने प्रेम के उदात्त स्वरूप को

---

*1. डॉ. उर्मिला गुप्ता, हिन्दी कथा साहित्य के विकास में महिलओं का योग, पृ. 151

अपने उपन्यासों का आधार बनाया तथा यह दर्शाया कि नारी त्याग और बलिदान से प्रेरित होकर जीवन से प्रेम की निष्ठा बरकरार रखती है। उनकी कहानियों के प्रमुख विषय - नारी का त्याग और सहनशीलता, पुरुष का स्वार्थ और हृदयहीनता, विधवा जीवन की विडम्बना, जमीन्दारों का कृषक पर अत्याचार, धर्मान्धता, अंधविश्वास, रूढ़िगत परंपराएँ आदि रहे। 'नीम चमेली', 'रात की रानी', 'रागीनी' आदि उनके प्रमुख कहानी संकलन हैं। उनकी कहानियों के बारे में श्री नन्ददुलारे वाजपेयी का कथन विशेष ध्यान देने योग्य है - 'आपकी कहानियों में कला की प्रधानता होते हुए भी वास्तविकता का चित्रण बडा सजीव और सुन्दर होता है। सामाजिक और घरेलु परिस्थितियों का वर्णन बडी सुचारुता और सहृदय दृष्टि से करती है।' *1

कमला चौधरी

हिन्दी कथा साहित्य के विकास में श्रीमती कमला चौधरी का योगदान महत्वपूर्ण है। नारी जीवन की विविध समस्याओं को ही उन्होंने अपनी कहानियों का विषय बनाया है। दाम्पत्य जीवन के हर्ष, विषाद, प्रेम, संयम आदि पूर्णरूप से चित्रित हुए हैं। भारतीय विधवाओं की कारुणिक जीवन गाथा भी इनकी कहानियों में चित्रित हुई है। 'उन्माद', 'यात्रा', 'पिकनिक' आदि उनकी कहानी संकलन हैं। अन्ततः उन्होंने मानवजीवन के अन्तर्जगत एवं पारिवारिक सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन की विविध परिस्थितियों के आधार पर समसामयिक संवेदनाओं से भरपूर सामाजिक कहानियाँ लिखी हैं।

*1. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ, पृ. 382

श्रीमती चन्द्रकिरण सौनरक्सा

विकासकाल की कहानी लेखिकाओं में श्रीमती चन्द्रकिरण सौनरक्सा का महत्वपूर्ण स्थान है। श्री शिवदान सिंह चौहान ने उनके बारे में उनकी कहानी संग्रह 'आदमखोर' की भूमिका में यों कहा है - 'चन्द्रकिरण जी की प्रतिभा मानव जीवन का स्वाभाविक चित्रण करने के रूप में प्रस्फुटित हुई है। ..... चन्दकिरण जी की कहानियों की श्रेष्ठता इसी में है कि उनमें मानव जीवन का ऐसा ही स्वाभाविक और शक्तिपूर्ण चित्रण मिलता है।'*1 विषय वस्तु की दृष्टि से उनकी कहानियाँ तीन प्रकार की होती हैं -जैसे पारिवारिक, सामाजिक और व्यंग्यात्मक कहानियाँ। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं - 'मर्द', 'गिरती दीवारें' ,'आदमखोर', 'छलिया' आदि। भारतीय जनजीवन की बढ़ती हुई विषमता के परिणामस्वरूप मानवता के मानसिक, शारीरिक और बौद्धिक संघर्ष का चित्रण चन्द्रकिरण जी की कहानियों का प्रमुख लक्ष्य है।

तेजरानी पाठक

श्रीमती तेजरानी पाठक की कहानियों में मानवीय व्यवहारों के विविध यथार्थवादी और आदर्शवादी चित्र अंकित किए गए हैं। 'अंजलि', 'एकादशी' आदि उनके प्रमुख कहानी-संग्रह हैं। उन्होंने मुख्य रूप से समाज के आर्थिक वैषम्य को अपनी कहानियों में स्थान दिया है। यही नहीं उनकी कहानियों में अत्याचारी अभिजातवर्गों, रूढ़िवादी व्यक्तियों, समाज के चाटुकारों आदि केलिए चेतावनी की आवाज़ निहित है।

---

*1. शिवदान सिहं चौहान'आदमखोर' (कहानी संग्रह) भूमिका से उद्धृत, पृ.12

तारा पांडे

श्रीमती तारा पांडे के बारे में कहानी सम्राट प्रेमचन्द ने लेखिका के कथा संकलन 'उत्सर्ग' की भूमिका में यों कहा है - श्रीमती तारा पांडे कवि हैं और कवि का हृदय और कवि की आँखें रखती हैं। ..... उनका संसार कपट और स्वार्थ का संसार नहीं, प्रेम और आदर्श का संसार है।'*1 'उत्सर्ग' की कहानियों में लेखिका का उद्देश्य नारी जाति के गौरव को व्यक्त करना रहा है। श्रीमती तारा पांडे मूलतः कवयित्री होते हुए भी कहानीकार के रूप में जीवन के सामान्य घटना चित्रों का हृदयस्पर्शी चित्रण करने में सिद्धहस्त हैं।

इस प्रकार आज़ादी के पहले ही महिला लेखन ने जिस शक्तिशाली रूप को धारण किया था उसका उल्लेख डॉ. वन्दना शुक्ल के शब्दों में और भी स्पष्ट निकला है - 'भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन व सुधारवादी आन्दोलन के फलस्वरूप नारी मानसिकता में भी परिवर्तन आया और वे अपने को पुरुष के समकक्ष समझने लगीं। नारी के इस नये रूप भाव को लेकर साहित्यकारों ने अनेक रचनाएँ की हैं, जिनमें महिला उपन्यासकारों की अपनी विशिष्ट भूमिका रही है।'*2

2 . स्वातंत्र्योत्तर महिला कहानीकारों का समाज

स्वतंत्रता के बाद नारी जागरण के जो नये सन्दर्भ सामने आए उसे महिला लेखकों ने पूरे आत्मविश्वास के साथ उभारा। स्त्री और पुरुष

*1. प्रेमचन्द, उत्सर्ग (कहानी संकलन) दो शब्द से उद्धृत

*2. 'आजकल' (पत्रिका), सितंबर 1984.

के आपसी संबन्धों को नारी की दृष्टि से इन्होंने उजागर किया। इनकी कहानी में कभी - कभी इतना खुलापन आ गया है जो पुरुष कहानीकारों की कहानियों में बहुत कम देखने को मिलता है। आज की हिन्दी कहानी को इनकी देन की उपेक्षा न करके उनका सही मूल्यांकन होना अपेक्षित है। उषा प्रियंवदा, निरुपमा सेवती, दीप्ति खण्डेलवाल, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी ममता कालिया, राजी सेठ, शशिप्रभा शास्त्री, मृदुला गर्ग, मृणाल पांडे, रजनी पनिक्कर, सूर्यबाला, मेहरुन्निसा परवेज़ ऐसे कुछ नाम हैं जिन्होंने इस विधा को निस्सन्देह समृद्ध किया है। किसी भी अन्य साहित्यिक विधा की तुलना में समकालीन जीवन - स्थितियों की पहचान कहानी का मुख्य सरोकार रहा है। समकालीन महिला हिन्दी कथा लेखन समाज और देश की व्यापक समस्याओं को अपने ढंग से चित्रित कर रहा है। यद्यपि ऐसी रचनाएँ संख्या में बहुत कम हैं फिर भी महिला कथा लेखन के बदलते दृष्टिकोण इसमें ज़रूर दिखाई देते हैं। वैसे स्वातंत्र्योत्तर काल में लेखिकाओं को सृजनात्मक अभिव्यक्ति की सुविधाएँ मिली हैं। आज के समाज में नारी पुरुष के आपसी संबन्ध काफी बदल गए हैं। आज नारी अपने को जानने की प्रक्रिया से गुज़रकर समझने की भूमि तक पहुँची है। भारतीय संस्कृति संसद कलकत्ता में २७ दिसम्बर १९६५ को आयोजित 'महिला कथाकार और पीठिका' गोष्ठी में दिए मन्नू भण्डारी का वक्तव्य यहाँ विशेष उल्लेखनीय है -'अब तक की कहानियों और उपन्यासों की नायिका - नारियाँ अधिकतर किसी न किसी पुरुष के व्यक्तित्व पर केन्द्रित होकर उसकी स्वीकृति या अस्वीकृति से प्रतिक्रियान्वित होकर ..... त्याग और तपस्या की मूर्ति गढ़ी जाती रही। ..... नारी का वह चित्रण

उसकी वास्तविकता, समग्रता को व्यक्त करने में असमर्थ था, किन्तु आज के कथाकार ने इस मनगढन्त मूर्ति को खण्डित कर उसे उसके वास्तविक यथार्थ में स्थापित किया है।' *1 इसका श्रेय भी मुख्य रूप से महिला लेखन को है। नारी मुक्ति आन्दोलन, फ्री सेक्स, समानाधिकार, नैतिक संबन्ध, कामकाजी महिलाओं के अनुभव आदि के बारे में लेखिकाओं के उपन्यासों का स्वर अलग प्रतीत होता है। महिला लेखन की सार्थकता पर विचार प्रकट करते हुए श्रीमती ऋता शुक्ला ने लिखा है - 'आज का महिला लेखन किसी विशिष्ट चौखटे में बन्ध जाने की विवशता से नहीं पूरी विश्वसनीयता के साथ जिन्दगी की एक एक परत को उघेडकर भीतर तक प्रवेश कर जाने की उत्सुकता से पूर्ण है।' *2 यहाँ यह भी विचारणीय है, महिला लेखन के पृथक विश्लेषण पर आज कई लेखिकाओं ने असंतोष प्रकट किया है। मृदुला गर्ग ने इसपर अपनी राय यों प्रकट की है - 'मैं नहीं मानती कि महिला लेखन और पुरुष लेखन में कोई मूलभूत अन्तर है। जहाँ तक मेरा अपना लेखकीय अनुभव है, स्त्री होने के कारण मुझे न अतिरिक्त संघर्ष करना पडा और न अतिरिक्त शोषण या पक्षपात का सामना।'*3 वास्तव में महिला कथा लेखन की मुख्य धारा के सबन्ध अलग हैं, जैसे वे स्त्री की लडाई में, उसकी सामाजिक पहचान पुरुष के समकक्ष स्थापित करने में पुरुष चालित समाज में उसके लिए बनाये गए बंधनों के खिलाफ आवाज़ उठाने में वह अपना स्थान सही तरह से निभाती है। किन्तु

*1. आलोचना (पत्रिका) (पूर्णक 34) पृ.115

*2. 'आजकल' सितम्बर 1984 पृ. 25

*3. वही पृ. 43

'महिला लेखन' की परिचर्चा में मन्नू भण्डारी जैसे लेखिकाओं ने किसी ऐसे चीज़ को मानने से इनकार किया जो लेखन को महिला लेखन बनाती है। इसके बारे में चित्रा मुद्गल ने बताया है - 'स्वर्ण मानसिकता से ग्रस्त हिन्दी साहित्यकार एवं मूर्धन्य आलोचक समकालीन सृजन परिदृश्य में महिला रचनाकारों में चुनौतीपूर्ण भागीदारी को 'जनाना लेखन' की संज्ञा देकर उसे अपने से कमतर साबित कर अपनी सदियों पुरानी उसी सामंती संकीर्ण मानसिकता की लगातार विद्वेषपूर्ण अभिव्यक्ति कर रहे हैं जिसकी उन्हें आदत पड चुकी हैं। *1

जो भी हो यह गौरव और सन्तोष की बात है कि आजकल बहुत-सी समर्थ लेखिकाएँ कलम की धनी हैं, जिन्होंने नारी जीवन के चित्रण के उत्तरदायित्व को विशेष रूप से संभाला है। पुरुष कथाकार के प्रमुख प्रभाव से विलग होकर उन्होंने अपनी बात स्वयं कही है। फिर भी यह समाज लेखिकाओं के लेखन पर नारी की 'गंध' का आरोप लगाते हैं। इसके बारे में डॉ रघुवीर सिन्हा का कथन विशेष उल्लेखनीय है - 'अक्सर महिला कथाकारों के लेखन पर नारी गंध का आरोप लगाया जाता है। यह आरोप उनके एक सोची समझी साज़िस है। खुशी की बात है कि महिला कथाकारों पर इस लफ्फाजी का कोई असर नहीं पडा है। महिलाओं का गत एक दश्क का लेखन स्वयं इस बात का प्रमाण है। लेखन में औरतपन और नारी गंध का आरोप भेदभावपूर्ण और सीमित विचार है। जिस तरह पुरानी कथाओं में राक्षसों को मानुसगंध आती थी उसी तरह आज के समीक्षक के नथुनों में नारीगंध

*1. 'संवाद' और हस्तक्षेप, मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भोपाल जुलाई 1996

समा गयी है।'*1 जो भी हो नारी हृदय के अनकहे मूकसत्य को पूरी ईमान्दारी के साथ महिला कथाकारों ने ही अभिव्यक्त किया है। डॉ. रामदरश मिश्र का मन्तव्य है - 'मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, सोमा वीरा, श्रीमती विजय चौहान, शशिप्रभा शास्त्री आदि महिला कहानीकार आज के नारी जीवन के भीतर उफनती, कसमसाती नई चेतना को उसकी पीडा के सन्दर्भ में प्रस्तुत करती हैं।*2 ऐसी कुछ लेखिकाओं का उल्लेख न कँरू तो यह अध्याय अपने में अधूरा रह जाएगा।

उषा प्रियंवदा

स्वातंत्र्योत्तर कहानी लेखिकाओं में सबसे प्रभावशाली लेखिका उषा प्रियंवदा है। उनकी रचनाओं में नारी जीवन का एक और पक्ष उद्‌घाटित हुआ है। वह यह है कि भारतीय नारी का पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रभाव में हुआ वैचारिक बदलाव। उनके बारे में डॉ. संतबक्श सिंह ने 'नई कहानी कथ्य और शिल्प ' में कहा है - उषा प्रियंवदा ने देशी और विदेशी परिवेशों में स्त्री - पुरुष के संबन्धों को व्यक्त किया है। इनके प्रस्तुतीकरण में शिष्टता, भावाभिव्यक्ति में वैचारिक गरिमा, भावुकता में बौद्धिक अनुशासन और सर्वत्र शिक्षित संतुलित दृष्टि दिखाई पड़ती है। इन्होंने कृतिकार की ईमानदारी के साथ जीवनानुभव की प्रामाणीकता को कथा में उतारा है।'*3 उनके

---

*1. डॉ. रघुवीर सिन्हा, आधुनिक हिन्दी कहानी समाजशास्त्रीय दृष्टि पृ. 24

*2. डॉ. रामदराश मिश्र हिन्दो कहानी, अन्तंरग पहचान, पृ. 60

*3. डॉ. संतबक्श सिंह, नई कहानी कथ्य और शिल्प पृ. 117, 118

'शेष यात्रा' जैसे उपन्यास, 'वापसी' जैसी कहानी उनकी प्रखर प्रतिभा का प्रमाण उपस्थित करता है।

उनकी 'वापसी' कहानी हमारे जीवन संबन्धी दृष्टिकोण का एक मूल्यांकन बन गई है। डॉ. नामवर सिंह ने उषा प्रियंवदा की इस कहानी पर टिप्पणी करते हुए लिखा है - 'यह एक व्यक्ति की अपने द्वारा निर्मित अपने ही परिवार से वापसी की कहानी न होकर सारे पुराने मूल्यों से वापसी और एक नयी दिशा और राह पर चलने की कहानी है।'*1 एक किस्सागो की सारी सफाई के साथ उन्होने साफ सुथरी एवं अर्थपूर्ण कहानियाँ लिखी हैं।

मन्नू भण्डारी

विषय वैविध्य और नये आयामों की दृष्टि से समकालीन कथा लेखन में मन्नूजी का लेखन एक ऐसा कीर्ति स्तंभ है जिसके बिना हिन्दी कथा विकास की यात्रा अपूर्ण है। मन्नूजी पहली साहसी लेखिका है जिन्होंने तरुण नागरिक स्त्री भावों को सत्य के स्तर पर खोलने का प्रयत्न किया। श्री राजेन्द्र यादव ने इसके बारे में लिखा है - 'भ्रम और सेक्स के दुहरे जटिल शोषण के संस्कारों के जाल से नारी के मौलिक और स्वतंत्र व्यक्तित्व को खोज निकालने केलिए जिस साहस और निर्भीकता की आवश्यकता है वे मन्नू के सबसे सशक्त हथियार हैं।'*2 उनकी कहानियाँ न तो आंचलिक हैं, न ही अत्यंत संवेदना को अभिव्यक्त

---

*1. डॉ. नामवर सिंह, कहानी नई कहानी - पृ. 196

*2. संपादक-राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी : श्रेष्ठ कहानियाँ, (प्रमुख स्वर) पृ.6

करती हैं। उन्होंने नारी की असलियत को उभारने की चेष्टा की है। यहाँ डॉ. रामदरश मिश्र और राजेन्द यादव जी द्वारा मन्नू जी के लेखन सबन्धी विशिष्टताओं के बारे में की गयी समीक्षा उल्लेखनीय लगता है - 'मन्नू में दो चीज़ें दर्शनीय हैं - 'एक तो इन्होंने परिवारिक जीवन की विविध समस्याओं और नर - नारी सबन्धों के विविध आयामों को लिया है और कहीं कहीं तो सामाजिक जीवन के भी गहरे प्रश्नों को प्रामणिकता के साथ रूपायित किया है और दूसरे प्रायः इनकी कहानियों का स्तर एक - सा उँचा है।' *1

यादव जी ने कहा है - व्यर्थ के भावोच्छ्वास में नारी के आँचल का दूध और आँखों का पानी दिखाकर उसने पाठकों की दया नहीं वसूली ..... वह एकदम यथार्थ के धरातल पर नारी का नारी की दृष्टि से अंकन करती है। *2 आज पारिवरिक रिश्ते और सामाजिक संबन्ध - मात्र रागात्मकता से जुडे नहीं हो सकते। इसे मन्नूजी ने अनेक रचनाओं के द्वारा अभिव्यक्त किया है। हमारे शोध प्रबन्ध की उपजीव्य लेखिका मन्नू भंडारी के कृतित्व का विस्तृत और समीक्षात्मक अध्ययन आगे के अध्यायों में किया जाएगा।

कृष्णा सोबती

एक अन्य गण्य मान्य महिला कथाकार हैं कृष्णा सोबती। उनकी उपन्यास कला का उल्लेखनीय महत्व यह है कि उन्होंने आंचलिक

---

*1. डॉ. रामदरश मिश्र, हिन्दी कहानी: अंतरंग पहचान, - पृ. 143

*2. राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी: श्रेष्ठ कहानियाँ (प्रमुख स्वर) पृ.6

उपन्यास की रचना करके हिन्दी लेखिकाओं द्वारा रचित कथा साहित्य में पाये जानेवाले एक अभाव की पूर्ति की है। उनका 'जिन्दगी नामा' इसका उत्तम उदाहरण है। 'डोर से बिछुडी', 'दिलो दानिश' आदि सामाजिक उपन्यासों में भारतीय समाज में नारी की अधोदशा को रेखांकित किया है। पारिवारिक विघटन जो पीढ़ियों के संघर्ष व संयुक्त परिवार के टूटने से हो रहा है, उसका मार्मिक चित्रण सोबती जी ने अपनी रचनाओं द्वारा अभिव्यक्त किया है। यही नहीं उन्होंने अपने कथा साहित्य में नारी जीवन से संबन्धित विभिन्न नये पक्षों को रेखांकित किया है, जैसे - उनके द्वारा पुरुष के अधिकारों को चुनौती देकर समानाधिकारों की प्राप्ति, स्वच्छंद सेक्स जीवन का उपभोग, विवाहेतर काम संबन्धों को पाप न समझना, आत्म निर्भरता, विधवाओं द्वारा पुनर्विवाह कर लेने का समर्थन, रखैलों द्वारा पुरुषों के परिवारों में पत्नियों जैसे सादर चाहने तथा वेश्याओं द्वारा अपनी नियति के प्रति विद्रोह आदि। उनके 'सूरजमुखी अंधेरे के', 'मित्रो मरजानी' आदि ऐसे उपन्यास हैं।

निरुपमा सेवती

एक अन्य महिला - कथाकार निरुपमा सेवती ने अपने उपन्यासों में नारी की अपनी अस्मिता के संघर्ष को वाणी दी है। वे अपनी रचनाओं के द्वारा यही बात समझाना चाहती हैं कि अगर नारी को सामाजिक रूप से स्वतंत्र होना है तो उसका आर्थिक रूप से स्वतंत्र होना बहुत ही ज़रूरी है। उन्होंने अपने उपन्यास 'पतझड की आवाज़ें', 'मेरा नरक अपना है' आदि के द्वारा सामाजिक और वैचारिक धरातल

पर नारी स्वतंत्रता के प्रश्न को उठाया है। उनकी कहानियाँ भी नारी के आर्थिक स्वावलंबन के कारण पति - पत्नी एवं पारिवारिक संबन्धों में आये तनाव और नारी के व्यक्तित्व पर पडे प्रभाव को ध्वनित करने वाली हैं - जैसे 'माँ यह नौकरी छोड दो', 'तलाश के बाद' आदि। उन्होंने आधुनिक नारी की मानसिका के यथार्थ को अंकित करते हुए यह दर्शाया है कि आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होकर, जीवन के सभी भौतिक सुख साधन प्राप्त करने पर भी उसके अन्दर की नारी अपूर्ण है, अतृप्त है।

मुदुला गर्ग

मुदुला गर्ग - व्यापक समस्याओं को नये अंदाज़ में सामने रखने की क्षमता रखनेवाली लेखिका है। स्वतंत्रता आंदोलन की पृष्ठभूमि पर लिखा गया उनका सशक्त मनोवैज्ञानिक उपन्यास है 'अनित्य'। इसमें देश की राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पतनशीलता का मार्मिक विश्लेषण किया गया है। स्त्री - पुरुष संबन्धों और यौन नैतिकता को लेकर लिखा गया उनका उपन्यास 'चितकोबरा' बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसके द्वारा उन्होंने यह प्रश्न उठाया है कि शारीरिक पवित्रता, यौन शुचिता आदि केवल स्त्री केलिए ही इतनी महत्वपूर्ण क्यों ?

महिला लेखन के विशेष सन्दर्भ में अपनी राय प्रकट करते हुए उन्होंने कहा है - 'इस औरत तर्क की पहली शर्त यह है कि औरत पर थोपी गयी नैतिक कलई को खुरच कर भीतर के इंसान को पहचाना जाय। यहाँ - वहाँ छुपने को मज़बूर, ये बहुमुखी प्रकृत और जटिल

औरतें अब अपने बुर्के ओर घूँघट हटाकर सामने आ रही हैं, यह खुशी की बात है। जो कहानी नैतिकता का ढोल - पीटे बगैर बेबाकी से ऐसी औरत का चित्रण करे और पाठक को अपने भीतर झाँक कर दुबारा अपना विश्लोषण करने पर मजबूर करे, वह निश्चित रूप से चेतना संपन्न कहानी कहलाएगी, कहना न होगा कि आज महिला लेखन के यही प्रमुख सरोकार और चिंताएँ हैं।'*1 मुदुला गर्ग की 'अगली सुबह', 'विनाश दूत', 'उर्फ सैम' आदि ऐसी कहानियाँ हैं, जो देश और समाज की व्यापक समस्याओं को उसी यथार्थ के साथ चित्रित करती हैं।

राजी सेठ

राजी सेठ महिला लेखन के अलग अस्तित्व को स्वीकारनेवाली लेखिका हैं। उनके 'यात्रा मुक्त' गुलामी के प्रति चेतना उत्पन्न होने से लेकर स्वाधीनता के आत्म बोध - प्राप्त करने तक की उपलब्धि की कहानी है। उन्होंने 'आज का नारी लेखन स्थिति एवं परिणति नामक निबंध में बताया है - 'पुरुष स्वीकृत है स्त्री स्वीकृति केलिए लड रही है। ..... इतना आगे बढ़कर भी आज नारी के घरेलू दायित्व वहीं के वहीं हैं। वह अपने जीवन अनुभव से सट कर चल रही है। स्त्री अपने लेखन में जिस सत्य को प्रकाशित करती है, वह पुरुष के सत्य का पूरक क्यों 'न माना जाये'.....*2 राजी सेठ ने कामकाजी नारी समस्याओं को

*1. 'हंस (पत्रिका) मई 1993

*2. 'संचेतना' (पत्रिका) 57 मार्च 1981

यथावत् चित्रित करने का प्रयास किया है। उनकी प्रसिद्ध कहानी 'अन्धे मोड से आगे' नारी जीवन के नये मोड को रूपायित करती है।

शशिप्रभा शास्त्री की रचनाओं में भी नारी संबन्धी दृष्टिकोण ही प्रमुख रही है। 'क्योंकि', 'कर्क रेखा' आदि उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। नारी के व्यक्तित्व को न पहचानने की विडम्बनात्मक स्थिति का चित्रण उन्होंने 'क्योंकि' के द्वारा किया है।

ममता कालिया हिन्दी और अंग्रेज़ी की सुप्रसिद्ध लेखिका हैं। उनके उपन्यास आकार में लघु हैं, किंतु उसमें भारतीय परिवेश की विशेषतः नगरीय परिवेश की पूरी समग्रता को बटोरा है। उनकी रचनाओं में मनुष्य के दैनिक जीवन का संघर्ष ही मुखरित है। उन्होंने नारी की पीडा, यातना और दुर्दशा को समझने और परखने का प्रयास किया है। स्त्री - पुरुष के संबन्धों में समता का समर्थन ज़ोर से करनेवाली हैं ममताजी। गागर में सागर भरने में वे बडी कुशल हैं। उनके उपन्यास 'बेघर', कहानी 'आपकी छोटी बेटी' तथा एकांकी 'यहाँ रोना मना है' उनकी प्रतिभा को व्यंजित करता है।

दीप्ति खण्डेवाल ने आर्थिक स्वंतत्रता के कारण नारी जीवन में आये बदलाव को अपनी रचनाओं के द्वारा स्पष्ट किया है। अपनी कृतियों के द्वारा वे यही समझाना चाहती हैं कि पुरुष अधिकृत समाज में नारी का स्व भी मूल्यवान हो सकता है। 'तपिश के बाद', 'हव्वा' आदि रचनाओं में उन्होंने पति के अहम् से टकराते नारी के अहं और इससे उत्पन्न तनाव का चित्रण किया है।

मेहरुन्निसा परवेज़

नई पीढ़ी की लेखिका मेहरुन्निसा परवेज़ ने कई कहानियों में पुरुष के अकेलेपन के दर्द को चित्रित किया है। जिनका अर्थमूल्य कम होता है अथवा जो शारीरिक दृष्टि से कमज़ोर हो जाते हैं, लोग साधारणतया इनको नकारते हैं। ऐसे चरित्रों को उन्होंने 'उसका घर', 'अपने होने का एहसास' आदि के द्वारा चित्रित किया है। उनका 'बंजर दुपहर' स्त्री के अकेलेपन की कहानी है जो संतति के अभाव से उत्पन्न होती है। परिवारों में जो व्यक्ति बूढे, बेरोज़गार, अविवाहित, अपंग या विधवा होते हैं, उन्हें नकारने से उन्हें अकेलापन महसूस होता है। आज के भारतीय समाज में संयुक्त परिवार के टूटने से यह अकेलापन ज्यादा होता रहा है। मानव की इसी आंतरिक पीडा को मेहरुन्निसा परवेज़ ने आभिव्यक्त किया है।

इस प्रकार महिला रचनाकारों ने पति - पत्नी संबन्धों की अर्थहीनता, घुटन, तनाव आदि के साथ परिवार के अन्य सदस्यों की मानसिक पीडा तक गहराई तक जाकर पकड लिया है। यहाँ श्रीमती कमल कुमार का मन्तव्य उचित ही प्रतीत होता है - 'जिस परिवेश को नारी ने सहा और भोगा है उसकी अभिव्यक्ति भी वही प्रामाणिक रूप से कर सकती है।'*1 दूसरे शब्दों में महिला कथा लेखन स्त्री की लडाई में उसकी सामाजिक पहचान पुरुष के समकक्ष स्थापित करने में पुरुष चालित समाज में उसके लिए बनाये गये बंधनों के विरुद्ध संघर्ष में अपना हिस्सा सही ढंग से निभाता है। वैसे नारी-हृदय का जितना

*1. 'आजकल' (पत्रिका) जून, 1989

सफल चित्रण लेखिकाएँ कर सकी हैं उतना लेखकों के कथा साहित्य में उपलब्ध नहीं है। अन्ततः यह कहा जा सकता है कि उक्त लेखिकाओं के कहानी साहित्य का अनुशीलन करने पर उनमें पूँजीवादी शोषण की निन्दा, पीडित वर्गों के प्रति संवेदना, समाज सुधार की आकांक्षा से रूढ़ियों पर प्रहार, शोषित नारी वर्ग की उन्नति की आकुलता, यौन विकृतियों का यथार्थपरक चित्रण, सांप्रदायिक वैमनस्य, बेकारी, महँगाई जैसी समसामयिक, राजनीतिक समस्याओं का उल्लेख आदि मिलता है। महिला कथाकारों के बारे में डॉ॰ पुष्पपाल सिंह का मन्तव्य यहाँ उचित ही लगता है - ' मैं पूर्ण दायित्व से यह कहना चाहूँगा कि इस अनुभव वृत्त में नयी कहानी के दौर से लेकर अब तक जितने सशक्त रूप में कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा मन्नू भंडारी, मृदुला गर्ग, चित्रा मुद्गल, मृणाल पांडे, मंजुल भगत, सुधा अरोडा, राजी सेठ, चन्द्रकान्ता, सूर्यबाला और बाद की पीढ़ी में ऋता शुक्ल, मैत्रेयी पुष्पा, जया जादवानी, क्षमा शर्मा, प्रभा खेतान, सरयू शर्मा, कमल कुमार, सुषमा बेदी आदि ने लिखा है, उतने सशक्त रूप में पुरुष कथाकार नहीं लिख सकते थे। संबन्धों के सत्य पर लिखी गयी इनकी कहानियाँ न केवल अपने समय का दस्तावेज है, अपितु हमारी भाषा के साहित्य का गौरव भी बनती है।'*1

इस प्रकार बदले समाज में परिवर्तित परिस्थितियों के बीच नारी ने अपने शोषण की अद्भुत जानकारी दी है, साथ ही साथ राजनीतिक और अन्य क्षेत्रों में होनेवाले शोषण को भी सही तरह से आँका है। फिर

*1. मधुमती (पत्रिका) जून 1998.

भी महिला लेखन को आवश्यक गंभीरता प्रदान करने केलिए पुरुष अधिकृत समाज तैयार नही होता है। ऐसे संकुचित विचार वालें को कमल कुमार का यह कथन एक सटीक जवाब ही लगता है - 'मन्नू भंडारी का 'महाभोज' अकेला उपन्यास ही इस बात का प्रामाणिक दस्तावेज है और संकुचित विचार वाले आरोपियों केलिए लइट हाउस की तरह मार्ग दर्शन करता दीख पडता है।'*1

❑

*1. आजकल (पत्रिका) जून 1989